Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July 2024 5(7), 1053–1057

CRITERIA OF LITERATURE AND CREATIVITY

साहित्य के मानदंड और सृजनशीलता

Dr. Jitendra Kumar Bhagat [1]

[1] Assistant Professor, Maharaja Agrasen Mahavidyalaya, University of Delhi, India

ABSTRACT

English: Literature is an expression of thoughts and feelings, and also an artistic creation. Various criteria have been set for the evaluation of literature which test the quality of a work, help in highlighting its impact and aesthetics. On the other hand, creativity is the basic element of literature, which gives it novelty and originality as well as a unique style of expression. In this way, creation and criticism are related to each other. Literary creation and the criteria for its evaluation have always been controversial. Creativity is an independent process which is created by the writer's own individual consciousness. On the other hand, critical criteria are often created from social, cultural and theoretical framework. The tension between these two reflects the dynamism of literature. Criteria are in a way those criteria on the basis of which the literary quality, quality and impact of a work are assessed. In traditional norms, Rasa Siddhanta (Bharat Muni), Dhvani Siddhanta (Anandvardhana), Riti, Alankar, Vakrokti etc. are discussed. Modern norms are formed from realism, progressivism, experimentalism, new writing, aesthetics etc. Contemporary norms are based on sensitivity towards gender, Dalit discourse, environment etc. Creativity is basically uncontrolled, original and personal, whereas norms are objective, collective and theoretical. Due to this, conflicts arise many times. To become "literary", the creator feels compelled to follow some rules, due to which his natural expression may get affected, hence Agyeya has also criticized it in the preface of Doosra Saptak. Chhayavadi poets were also accused of 'ambiguity' in the beginning. They also had to face criticism from Shukla ji. No norm is perfect. The work which seems 'unliterary' today, can become a classic tomorrow. When Premchand was writing fiction fluently, his novels were considered to be of the 'ordinary' category, but today they are the priceless heritage of Hindi.

Hindi: साहित्य विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है, और साथ में एक कलात्मक सृजन भी। साहित्य के मूल्यांकन के लिए विभिन्न मानदंड निर्धारित किए गए हैं जो किसी रचना की गुणवत्ता को परखते हैं, उसके प्रभाव और सौंदर्यबोध को उजागर करने में सहायक होते हैं। दूसरी तरफ, सृजनशीलता साहित्य का मूल तत्त्व है, जो इसे नवीनता और मौलिकता के साथ-साथ अभिव्यक्ति की अनूठी शैली भी प्रदान करता है। इस तरह रचना और आलोचना एक दूसरे से संबद्ध है। साहित्यिक रचना और उसके मूल्यांकन के मानदंड हमेशा से विवादास्पद रहे हैं। सृजनशीलता एक स्वतंत्र प्रक्रिया है जो लेखन की अपने वैयक्तिक चेतना से निर्मित होता है। दूसरी तरफ आलोचनात्मक मानदंड प्राय: सामाजिक, सांस्कृतिक और सैद्धांतिक ढाँचे से निर्मित होते हैं। इन दोनों के बीच का तनाव ही साहित्य की गतिशीलता को दर्शाता है। मानदंड एक प्रकार से वे मापदंड होते हैं जिनके आधार पर किसी रचना की साहित्यिकता, गुणवत्ता और प्रभाव को आँका जाता है। पारंपरिक मानदंडों में रस सिद्धांत (भरतमुनि), ध्वनि सिद्धांत (आनंदवर्धन), रीति, अलंकार, वक्रोक्ति आदि की चर्चा होती है। आधुनिक मानदंडों का निर्माण यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नवलेखन, सौंदर्यशास्त्र आदि से होता है। समकालीन मानदंड जेंडर, दलित विमर्श, पर्यावरण आदि के प्रति संवेदनशीलता पर आधारित है। सृजनशीलता मूलतः अनियंत्रित, मौलिक और व्यक्तिगत होती है, जबकि मानदंड वस्तुपरक, सामूहिक और सैद्धांतिक होते हैं। इसके कारण कई बार टकराव उत्पन्न होता है। रचनाकार को "साहित्यिक" बनने के लिए कुछ नियम को पालने की बाध्यता महसूस होती है, जिससे कारण उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रभावित हो सकती है, इसलिए अज्ञेय ने दूसरा सप्तक की भूमिका में इसकी आलोचना भी की है। छायावादी कवियों पर भी आरंभ में 'अस्पष्टता' का आरोप लगा था। उन्हें शुक्ल जी की भी आलोचना झेलनी पड़ी। कोई भी मानदंड पूर्ण नहीं होता। जो रचना आज 'असाहित्यिक' लगती है, वह कल क्लासिक बन सकती है। जिस समय प्रेमचंद कथा साहित्य में धारा प्रवाह लिख रहे थे, उस समय उनके उपन्यासों को 'साधारण' कोटि का माना गया, लेकिन आज वे हिंदी की अनमोल धरोहर हैं।

Keywords: Literature, Public Welfare, Humanism, State of Perfection, State of Practice, Generalization, Three Moments, Imagination, Social Awareness, Individual, Collective, Effort, Consumption, Sensitive Knowledge, Knowledgeable Sensation, Externalization, Internalization, Criteria, Creativity साहित्य, लोकमंगल, मानवतावाद, सिद्धावस्था, साधनावस्था, साधारणीकरण, तीन क्षण, कल्पना, समाजबोध, व्यष्टि, समष्टि, प्रयत्नपक्ष, उपभोगपक्ष, संवेदनात्मक ज्ञान, ज्ञानात्मक संवेदन, बाह्यीकरण, आभ्यांतरीकरण, मानदंड, सृजनशीलता

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i7.2024.4881

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

1. प्रस्तावना

प्राचीन काव्यशास्त्र हो या अर्वाचीन साहित्य आलोचना- इन सबने साहित्य को देखने समझने का नजरिया दिया। पाश्चात्य दृष्टिकोण हो या भारतीय दृष्टिकोण- सबने साहित्य के गूढ़तम आयामों को गहराई से देखा। इधर साहित्य के मानदंड को शास्त्रवाद ने, स्वच्छंदतावाद ने, यथार्थवाद ने काफी प्रभावित किया है और आलोचकों ने इनका गहन विवेचन किया है। भाव और भाषा के स्तर पर कहीं अजनबीयत पर बात होती है तो कहीं विखंडनवाद पर, कहीं अकेलापना और त्रासदी पर तो कहीं शैली विज्ञान पर। कहीं अरस्तु-होरस की बात होती है तो कहीं शैली-वड्सवर्थ की। कहीं फ्रायड पर तो कहीं नीत्से पर बात होती है। भारत में भरत से लेकर आचार्य शुक्ल तक विद्वानों की लंबी फेहरिस्त है। कुल मिलाकर ये सभी यही चाहते हैं कि लोगों में साहित्य की समझ विकसित हो और उसके साथ आपकी अवरूद्ध दृष्टि का विकास हो। इस क्रम में कुछ आलोचक गरिष्ठ हो जाते हैं जब वे काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की पोटली खोलकर बैठ जाते हैं। इतिहास गवाह है कि इसी कारण शास्त्रवाद का विरोध हुआ, लेकिन इसके विरोध में जन्मी स्वच्छंदतावाद की धारा भी आगे चलकर कुंठित हो जाती है और यथार्थवाद का जन्म होता है। इसमें भी यदि देखें तो अतियथार्थवाद स्वच्छंदतावाद को ही ओढकर नया जन्म लेता है। तो यह क्रम चलता रहता है और चलता ही रहेगा, जैसे लोकतंत्र में समय आने पर सत्ता में बदलाव होता है, कभी चुनाव से तो कभी अभाव से।

नवीन विचारों का सृजन हो या समस्याओं को हल करने का तरीका नया हो, सृजनशीलता ही इसके लिए सोचने की क्षमता प्रदान करती है जो अलग अलग लोगों में अलग अलग स्तर पर होती है। दृष्टिकोण की विविधता और भिन्नता ही कला और साहित्य में अलग अलग जोनर के साहित्यकार पैदा करती है। साहित्यकार की सृजनशीलता में विभिन्न मानसिक क्षमताएँ, भावनाएँ और बाहरी प्रेरक तत्व शामिल होते हैं। सृजनशीलता के कुछ तत्व माने गए हैं- मौलिकता, लचीलापन, तरलता आदि। इन सभी का संबंध विचार या अवधारणा की क्षमता, दृष्टिकोण, निरंतर प्रवाह और विकास से जुड़ा है। मनोविज्ञान में सृजनशीलता के पीछे आत्मचेतना, कल्पना और विभिन्न विचारों की संयोजन क्षमता जैसी कई मानसिक प्रक्रियाएँ कार्य करती हैं। सृजनशीलता को प्रभावित करने वाले आंतरिक कारकों में रचनाकार की बुद्धि, उसका व्यक्तित्व, और उसकी आत्म प्रेरणा महत्वपूर्ण है जबकि बाह्य कारकों में वातावरण, संस्कृति और शिक्षा उसकी सृजनशीलता को प्रभावित करते हैं।

हिंदी के आलोचकों ने समाजबोध और साधारणीकरण को नए सिरे से समझने-समझाने का प्रयास किया है। अज्ञेय का कहना है कि साधारणीकरण अपने पुराने अर्थ में कुछ और था, अब कुछ और है और इसकी समस्या भी पहले की तरह नहीं है। ज्ञान सरणि के विस्तार से रचनाकार के सामने यह चुनौती है कि वह उसे आत्मसात करके अपनी रचना में पिरोने का प्रयास करे। दूसरी तरफ मुक्तिबोध का तीन क्षण सृजनशीलता के मनोविज्ञान को उभारता है। कहने को यह सृजन का मनोविज्ञान है लेकिन समाजबोध से अनुस्यूत ही है। उद्घाटन के बाद दूसरे क्षण में वे इसे जिस जीवनमूल्य और जीवनदृष्टि को उस उद्घाटित भाव से जोड़ने की बात करते हैं वह हमारी आलोचना परंपरा में समाजबोध, मूल्यबोध, मानवतावाद, या कह लें, शुक्लजी का लोकमंगल, अलग-अलग शब्दों में इसी जीवनमूल्य का विश्लेषण कर रहे होते हैं। भारतेंदु ने नाटक नामक निबंध[1] में भरत मुनि के नाट्यशास्त्र का जिक्र किया है, नाटक के अंग-उपांगों के बारे में बताया है लेकिन उन्हें लगता है कि आधुनिक समय में इस विधा के भीतर जो कुछ बदला है वह उसे यथार्थ से जोड़ता है, लोक से जोड़ता है, उसे मानव सापेक्ष बनाता है, पूर्ववर्ती नाटकों में नीहित अलौकिक और परालौकिक तत्व की अवहेलना करता है और नाटककार भारतेंदु स्वयं इसमें प्रयोग करते नजर आते हैं। 'अंधेर नगरी' में एक तरफ राजा-मंत्री-सिपाही है तो दूसरी तरफ गरडिया-मजदूर-गरीब भी है। बहरहाल, जो उदात्तता आभिजात्यता का जामा हुआ करता था, वह यहां टूटता नजर आता है, भाव के संदर्भ में भी, भाषा के संदर्भ में भी। केंद्र बदल जाने से अर्थ का परिवेश बदल जाता है। अब अर्थ का परिवेश लोकमंगल से समायोजित है। शुक्लजी ने इस लोकमंगल को साधने के क्रम में सृजनशीलता के दो आयाम बताये थे। सृजन की राह में कोई रचनाकार सिद्धावस्था की दिशा में बढ़ता है तो कोई साधनावस्था का मार्ग चुनता है। साधनावस्था के प्रति उनका झुकाव लोकमंगल के उपक्रम में मानव संघर्ष को स्थापित करना था, न कि मनोरंजन को। वे करूणा के हिमायती थे, जो मानव को मानव से जोड़ता है। मानव को मानव से जोड़ने का यह काम आसान नहीं है। मुक्तिबोध की कल्पना और फैंटेसी के सामने भी जीवनमूल्य और जीवनदृष्टि से जुड़ने की चुनौती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए वे सृजन की बारिकियों से अवगत कराते हैं। अज्ञेय आधुनिक समय में जिस विपुल ज्ञान सरणि की बात करते हैं, साहित्यकार के लिए वह क्या महत्व रखता है। रचनाकार होने के नाते वे इससे पीछा नहीं छुटाते, बल्कि उसे काव्य में ढालने के लिए प्रयत्नशील होते हैं और इसी क्रम में इन कवियों के लिए साधारणीकरण एक जटिल प्रक्रिया बन जाता है पर यह चुनौती इन्हें स्वीकार है। मुक्तिबोध यहीं पर एक संतुलन की तलाश करते नजर आते हैं। वे दो शब्दों को उठाते हैं- ज्ञान और संवेदना। इसी को जोड़ने के क्रम में वे ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान की बात करते हैं। इसके आसपास कल्पना है, जीवनमूल्य है, जीवन दृष्टि है। इन सबके संयोजन से रचना का जन्म होता है लेकिन यह स्पष्ट है कि रचना किसी रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है जिसमें उक्त तत्व के उचित समायोजन से हमें रचना नाम की चिड़िया हाथ लग जाती है। सृजनशीलता का कोई गणित नहीं होता, हां, यह जरूर है कि सृजन के मनोविज्ञान को समझने के लिए अन्य माध्यमों के अतिरिक्त गणितीय समीकरण भी समझने में सहयोग करते हैं। अपने तीन क्षण की व्याख्या में मुक्तिबोध के भीतर का आलोचक और रचनाकार एक साथ सक्रिय है, इसलिए एक हद तक भोगे हुए यथार्थ के करीब है। अज्ञेय के संदर्भ में भी यह बात कही जा सकती है। वे लिखते हैं-

एक क्षण भर और

[1] हिंदी आलोचना,, विश्वनाथ त्रिपाठी, संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या- 18

रहने दो मुझे अभिभूत। -(सर्जना के क्षण)[2]

वे उस क्षण में सत्य के पूंज का साक्षात्कार करना चाहते हैं जो उनके भीतर उद्घाटित हुआ है। इस क्षण को थामे रहना कठिन है। ये उद्घाटन का क्षण है। ये सर्जना का (पहला) क्षण है और अज्ञेय भी जानते हैं कि

'लंबे सर्जना के क्षण कभी भी नहीं हो सकते'। -(सर्जना के क्षण)

'कविता स्वत: स्फूर्त अभिव्यक्ति है'[3](Spontaneous overflow of powerful feelings) में भी वर्डसवर्थ का आशय क्षण के आवेग से है। सर्जना के तीन क्षणों[4] में मुक्तिबोध तीसरे क्षण को सबसे लंबा क्षण मानते हैं और यह क्षण अभिव्यक्ति का क्षण है या कहना चाहिए समय के स्तर पर यह क्षण से कहीं अधिक है जहां 'खास साइज और खास काट की अभिव्यक्ति' के लिए रचनाकार प्रयत्नशील होता है। पांच छ: सदी पीछे चलें जहां तुलसी साफ कहते हैं कि

कवि न होउँ नहि चतुर कहावाउँ

मति अनुरूप राम गुन गाउँ

और बाद के कवि में भिखारीदास कहते हैं कि

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई, न तो

राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो हैं।

तुलसीदास के लिए भक्ति प्रधान है, कवि चातुर्य है, जबकि भिखारीदास के लिए कविता। आज का रचनाकार संतुलन बनाकर चलना चाहता है, संवेदना और ज्ञान के बीच, आभ्यंतर और बाह्य के बीच। इसलिए मुक्तिबोध कला को बाह्य का आभ्यांतरीकरण और आभ्यंतर का बाह्यीकरण मानते हैं। वे संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन से भाव संसार और ज्ञान संसार को समझना चाहते हैं। विशेष का सामान्य हो जाना इनकी दृष्टि में कला है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मानवतावाद[5] की चर्चा की है, और वे इस मानवतावाद को भी जीवनमूल्य से जोड़ते हैं। लेकिन उनका स्पष्ट कहना है कि – 'मानवतावाद भी आया, दलितों और अध: पतितों के प्रति सहानुभूति का भाव भी आया और राष्ट्रीयता भी आयी। दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकती'।

संकीर्ण मानवतावाद उन्हें पसंद नहीं क्योंकि यह राष्ट्रीय चेतना और सुरक्षा के नाम पर विश्व को युद्ध की आग में झोंकता है। इसके संदर्भ को समझें तो यूक्रेन-रूस युद्ध, इज़्राइल- फिलीस्तीन युद्ध इसका ताजा उदाहरण है। द्विवेदी जी राष्ट्रीयता की भावना को 'ईर्ष्यालु रमणी' की संज्ञा देते हैं। नारीवादियों को इस शब्द पर आपत्ति हो सकती है। कुल मिलाकर वे राष्ट्रीयता और मानववाद को दो छोर पर देखने लगते हैं। लेकिन इन सबके पीछे उनका ध्येय मानव मूल्य और मानव मुक्ति ही है। वही चेतना, जो 'व्यक्ति मनुष्य को समष्टि मनुष्य'[6] बनाता है। वे सामूहिक मुक्ति की बात करते हैं।

शुक्ल जी ने स्पष्ट रूप से साहित्य को दो हिस्से में बांट दिया। प्रयत्नपक्षवाला साहित्य और उपभोगपक्ष वाला साहित्य।[7] आपकी किसमें रूचि है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। कौन सा साहित्य समाज के लिए हितकारी है, वह महत्वपूर्ण है। इस आधार पर आप जायसी और तुलसी[8] को पढ़ने लगेंगे, छायावाद और शेरो-शायरी को छोड़ देंगे। कर्मक्षेत्र के सौंदर्य की तलाश में आप बिहारी का बहिष्कार कर देंगे और वाल्मीकि व व्यास का अवगाहन करेंगे। बड़ी बारीकी से शुक्ल जी ने टाल्सटॉय के साहित्य को एकपक्षीय बताकर खारिज किया और शैली के रिवोल्ट ऑफ इस्लाम में नायक की हार को भी प्रेरक और उज्ज्वल माना। अध्यात्म को भी वे साहित्य से इतर मानते हैं।

साहित्य एक कलात्मक सृजन के साथ-साथ विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। साहित्य के मूल्यांकन के लिए उपरोक्त मानदंड किसी रचना की गुणवत्ता को परखते के साथ-साथ उसके प्रभाव और सौंदर्यबोध को उजागर करने में सहायक होते हैं। साहित्य सृजन के लिए लेखक में प्रतिभा होनी चाहिए। एक अच्छा लेखक अपनी सर्जनशीलता से नवीनता और मौलिकता का प्रदर्शन करता है और यह संभव हो पाता है उसकी अनूठी शैली से। स्पष्ट है, रचना और आलोचना एक दूसरे से संबद्ध है। साहित्यिक पर की गई आलोचना साहित्य से प्रेरित होकर गुण-दोष का विश्लेषण कर रही है या उसकी चेतना में कहीं यह विचार पनप रहा है कि वह अपनी आलोचना के मानदंडो से लेखकों का भी मार्गदर्शन करे। इसलिए रचना और उसके मूल्यांकन के मानदंड विवादास्पद हैं। सृजनशीलता एक स्वतंत्र प्रक्रिया है और वह लेखक की अपनी वैयक्तिक चेतना से निर्मित है जबकि आलोचनात्मक मानदंड का आधार प्राय: सामाजिक, सांस्कृतिक और सैद्धांतिक ढाँचा हैं। रचना और आलोचना के बीच का तनाव ही साहित्य की गतिशीलता को दर्शाता है। मानदंड एक प्रकार की कसौटी है, पैमाना है, जिनके आधार पर किसी रचना की साहित्यिकता, गुणवत्ता और प्रभाव को आँका जाता है। भारतीय

[2] अज्ञेय, संपादक- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृष्ठ संख्या-31

[3] आलोचना के सिद्धांत, शिवदान सिंह चौहान, संपादक – विष्णुचंद्र शर्मा, स्वराज प्रकाशन, संस्करण- 2001, पृष्ठ संख्या- 108

[4] नयी कविता का आत्म-संघर्ष, मुक्तिबोध समग्र, संपादक-नेमिचंद जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-388

[5] 'आधुनिक साहित्य नई मान्यताएँ' शीर्षक निबंध, हजारीप्रसाद द्विवेदी

[6] वही

[7] रामचंद्र शुक्ल संचयिता, संपादक रामचंद्र तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या- 153

[8] परंपरा का मूल्यांकन, राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या-88

काव्यशात्रों में रस सिद्धांत (भरतमुनि), ध्वनि सिद्धांत (आनंदवर्धन), रीति, अलंकार, वक्रोक्ति आदि की चर्चा होती है। आधुनिक मानदंडों का निर्माण यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नवलेखन, सौंदर्यशास्त्र आदि से हुआ है। दूसरी तरफ समकालीन मानदंड जेंडर, दलित विमर्श, पर्यावरण आदि पर आधारित है। यह सर्वविदित है कि सृजनशीलता अनियंत्रित, मौलिक और व्यक्तिगत होती है, जबकि मानदंड वस्तुपरक, सामूहिक और सैद्धांतिक होते हैं। इसी कारण सृजनशीलता और मानदंड के बीच टकराव और विरोधाभास तक नजर आता है। रचनाकार को मानदंड से दिशा मिल सकती है लेकिन वह आलोचकों के निर्देशानुसार रचना नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा करता है तो उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रभावित हो सकती है।

इस तरह यह साफ नजर आता है कि हिंदी आलोचना और सृजनशीलता का मनोविज्ञान एक गहन और बहुआयामी विषय है, जो साहित्यिक रचना प्रक्रिया, आलोचनात्मक दृष्टि और मानसिक प्रवृत्तियों के बीच संबंधों की पड़ताल करता है। साहित्यिक रचना के पीछे कल्पना, अवचेतन मन, अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ कैसे काम करती हैं, रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रेमचंद, निराला, या अज्ञेय जैसे रचनाकारों की सृजन प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक तत्वों की क्या भूमिका थी, फ्रायड, युंग और अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर हिंदी साहित्य में रचनाकारों के अवचेतन मन को कैसे समझा जा सकता है, क्या सृजनशीलता व्यक्तिगत पीड़ा, सामाजिक संदर्भ या आध्यात्मिक अनुभूति से उपजती है, उदाहरण के लिए, मुक्तिबोध की कविताओं में 'अंधेरे' की छवि को उनके मनोवैज्ञानिक संत्रास से जोड़कर देखा जाता है। इसी संदर्भ में निर्मल वर्मा का कथन उद्धृत करना प्रासंगिक है कि ‘एक महान कृति वह ‘लालसा’ है, जो बची रहती है कभी तृप्त नहीं होती’।[9]

इन सभी सवालों का जवाब सृजनशीलता के केंद्र में है जिसके आधार पर आलोचक साहित्य का मानदंड बनाता है, पाठ के 'प्रत्यक्ष' अर्थ से आगे बढ़कर उसके मनोवैज्ञानिक परतों को खोलने का प्रयास करता है, 'रस सिद्धांत' जैसी परंपरागत अवधारणाओं को आधुनिक मनोविज्ञान के साथ जोड़ने का प्रयास करता है। अज्ञेय साहित्य संसार में नकल और असल की पहचान की जिम्मेदारी आलोचकों पर छोड़ते हैं। उनके अनुसार-‘कवि स्वयं चेतावनी नहीं देते। यह काम उन आलोचकों, अध्यापकों और संपादकों का है’।[10] आलोचक यह देखता है कि छायावादी कविता में 'आत्म' और 'प्रकृति' के बीच किस प्रकार का मनोवैज्ञानिक संबंध है। वह देखता है कि प्रेमचंद के 'होरी' या 'धनिया' जैसे पात्रों के मनोविज्ञान में सामाजिक दबाव और आंतरिक संघर्ष कैसे प्रकट होता है। समकालीन संदर्भ में सृजनशीलता के आयाम में किस तरह डिजिटल युग, अकेलापन या पहचान के संकट के साथ साथ मनोविज्ञान के नए सिद्धांत से जुड़ रहे हैं, आलोचक इस तरह अपने मानदंडों में समयानुसार बदलाव कर रहे हैं या करना चाहिए। ‘प्रत्येक युग के साहित्य-अध्येताओं ने अपने-अपने ढंग से मूल्यांकन की प्राप्त कसौटियों में परिवर्तन,परिवर्द्धन और संशोधन किए हैं। प्रत्येक युग ने अपनी जागतिक तस्वीर (world Picture) तथा जीवन-दृष्टि के अनुरूप अपना मानदंड बनाया है और उसी के अनुरूप कुछ लेखक किसी युग में अधिक प्रिय हो जाते हैं, कुछ उपेक्षित’।[11] साहित्य को परखने और उसकी गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए विभिन्न मानदंड अपनाए जाते हैं। ये मानदंड साहित्य की प्रभावशीलता, कलात्मकता और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करते हैं।

2. निष्कर्ष

साहित्य में सृजनशीलता विचारों की नई दिशाओं को जन्म देती है, जबकि मानदंड उसकी गुणवत्ता सुनिश्चित करते हैं। साहित्य में सृजनशीलता का सबसे बड़ा मानदंड उसकी मौलिकता होती है। नई शैली, नए विचार और अनूठे शिल्प वाली रचनाएँ ही कालजयी बनती हैं। साहित्यिक रचना को इस दृष्टिकोण से देखा जाता है कि वह जीवन की सच्चाइयों को किस हद तक प्रतिबिंबित करती है। यह समाज, संस्कृति और व्यक्तित्व को किस तरह प्रस्तुत करती है। श्रेष्ठ साहित्य की पहचान यह है कि वह स्थान, समय और परिस्थितियों की सीमाओं को पार कर व्यापक रूप से प्रासंगिक बना रहता है। कालजयी रचनाएँ विभिन्न युगों में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखती हैं। साहित्य में सृजनशीलता और मानदंडों का परस्पर संबंध संतुलित होना चाहिए। जहाँ मानदंड साहित्य को अनुशासित और प्रभावशाली बनाते हैं, वहीं सृजनशीलता उसे जीवंत और कालजयी बनाती है। यदि कोई साहित्य केवल मानदंडों तक सीमित रह जाए, तो वह यांत्रिक बन सकता है, और यदि केवल सृजनशीलता पर ज़ोर दिया जाए, तो वह दिशाहीन हो सकता है। अतः एक श्रेष्ठ साहित्यिक कृति वही होती है, जो नवीनता और कलात्मकता के साथ-साथ मानदंडों की कसौटी पर भी खरी उतरे। आलोचको को मानदंड बनाने की प्रक्रिया में रचना और युग के संदर्भों से आगे जाकर कुछ नया ढूँढ़ने की बेचैनी है और वह कहीं न कहीं रचना में ही निहित है। इस कथन का अर्थ पाठ केंद्रित होना नहीं है, बल्कि पाठ के निकट होना है, समष्टि और व्यष्टि के नजदीक होना है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

[9] शताब्दी के ढलते वर्षों में, निर्मल वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण- 2011, पृष्ठ- 57
[10] कविता का संप्रेषण, अज्ञेय, समकालीन हिंदी आलोचना, संपादक- परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1998, पुर्नमुद्रण-2013, पृष्ठ संख्या- 51
[11] आलोचना और आलोचना, देवीशंकर अवस्थी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 1913, आवृत्ति- 2013, पृष्ठ संख्या- 15

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

कविता का संप्रेषण, अज्ञेय, समकालीन हिंदी आलोचना, संपादक- परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1998, पुर्नमुद्रण- 2013
हिंदी आलोचना,, विश्वनाथ त्रिपाठी, संस्करण-1999
अज्ञेय, संपादक- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
आलोचना के सिद्धांत, शिवदान सिंह चौहान, संपादक – विष्णुचंद्र शर्मा, स्वराज प्रकाशन, संस्करण- 2001
नयी कविता का आत्म-संघर्ष, मुक्तिबोध समग्र, संपादक-नेमिचंद जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2019
आधुनिक साहित्य नई मान्यताएँ' शीर्षक निबंध, हजारीप्रसाद द्विवेदी
रामचंद्र शुक्ल संचयिता, संपादक रामचंद्र तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2003
परंपरा का मूल्यांकन, राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002
शताब्दी के ढलते वर्षों में, निर्मल वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण- 2011,
आलोचना और आलोचना, देवीशंकर अवस्थी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 1913, आवृत्ति- 2013